



# सन्त-मत में साधना का स्वरूप

लेखक

प्रताप सिंह चौहान  
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग  
युवराजदत्त कालेज  
लखीमपुर

प्रकाशक

प्रत्यूष-प्रकाशन  
रामबाग, कानपुर

प्रकाशक—प्रत्यय प्रकाशन, रामबाग कानपुर ।

लेखक—प्रो० प्रताप सिंह चौहान

मूल्य—५५० न० पै०—सात तीन रुपये

प्रकाशन काल—दीपावली सात नवम्बर १९६१ ई०

आवरण चित्रकार—श्री० के० ड० कानपुर ।

आवरण मुद्रक—जाव प्रस नि० कानपुर ।

जिल्दसाज—रफीक अहमद एण्ड सन्स कानपुर ।

मुद्रक—घाणी मुद्रण कार्यालय कानपुर ।

ऋषिकल्प आदरणीय ठा० जयदेव सिंह

को

जिनके व्यक्तित्व में साहित्य, साधना और अध्यात्म  
की त्रिवेणी प्राप्त  
होती है

सादर, सभक्ति

समर्पित

लेखक



ठा० जयदेव सिंह जी



## विषय-सूची

१-सन्त मत में साधना का स्वरूप	१
२-आध्यात्मिक साधना में पिपीलिका, मोन और विहङ्गम मार्गों की परिकल्पना	१३
३-सन्त मत में नाम अथवा शब्द की मान्यता	२७
४-सन्त मत की सुरति शब्द साधना और पश्चिम द्वार	३९
५-सन्त मत में सुरति, निरति और सहज समाधि की मायता	४६
६-सन्त मत की साधना के अंतराय	६९
७-सन्त मत में प्रतीक और रूपक योजना	९८
८-सन्त मत में दान्य का महत्व	१२३
९-सन्त काव्य में सामाजिकता अथवा प्रेयणीयता	१३६
१०-अध्यात्म, भौतिकता और जीवन	१६१





कार को जन्म देने वाली बुद्धि है और वह मस्तिष्क वासिनी है। अतः मस्तिष्क अथवा शिर सभी प्रकार के अहंकारों का मूल है उदगम स्थान है। अतएव उन्होंने शिर व प्रतीक द्वारा अहंकार का अभिव्यक्त किया है। बिना अहंकार की निवृत्ति के वाइ भी इस पथ पर नहीं चल सकता। इस दाहे का यही भाव है।

बबीरदास के अतिरिक्त महात्मा जदाम ने भी नाम अथवा शब्द साधना को अहंकार का यही मानी माया विघ्नो के शमन करने में सबसे अधिक प्रभावशाली माना है। उनका तो यह दृढ़ विश्वास है कि नाम साधक के पास अहंकार की गति ही नहीं हो सकती। निम्न लिखित पद में उन्होंने सबतोमुखी 'मैं' की हार स्वीकार की है। पद कुछ बड़ा है फिर भी मैं उसको उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकता। पद इस प्रकार है—

अब मैं हारयाँ र भार् ।

धनित भयो सब हाल चाल त, लोभ न वेद बराई ।  
 भवित भयो गायन नर नाचन, याची सेवा पूजा ।  
 काम क्रोध ते देह धनित भर्, कहो कहाँ तो दूजा ।  
 राम जनहु ना भगत कहाऊँ, चरन पखारु न देवा ।  
 जोइ जाइ करौ उत्तटि मोहि बाध तात निवट न मवा ।  
 पहले गान का दिया चादना, पाछ दिया बुझाई ।  
 गुन सहज मे दोऊ त्याग राम न कहू दुस धार् ।  
 दूर बसे पट कम सकल जग, दूरउ की ह सक ।  
 गान ध्यान दूर दाठ कीह दूरिउ छोड तेऊ ।  
 पाचो धनित भये हैं जह तह जहा तहाँ धिति पाइ ।  
 जा कारण मैं दोरो फिरतो, सो अब घर मे आई ।  
 पाँचा भरी सखी रहेतो, निन निधि दर्द दिखाई ।  
 अब मन फूलि भयो जग महिषा, आप उत्तटि समाई ।



चलत घूँत मेरो निज मन भावयो अब मोस चलो न जाई ।  
 साई सहज मिला सोई सनमुख कह रदास बटाई ।  
 रदास जी की बानी पृष्ठ २ ३

उपयुक्त पद में मन की गति अथवा वह की व्याप्ति के प्रायः संपूर्ण प्रकारों का उल्लेख प्राप्त होता है। सम्पूर्ण ज्ञान चाल अर्थात् मैं तू में बिलंबे ज्ञान ससार से मन उनका वंचित हो गया है। लौकिक तथा पारलौकिक यश की कामना नहीं रही, क्योंकि ये दोनों दुष्ट हैं और जीव को माया बंधन में बाधते हैं। अग्नि पत्तियों में बलि माया विग्रह का विस्तार करता हुआ कहता है कि मैं अब नाम अथवा शब्द की साधना की सिद्धि के पश्चात् गायन और नृत्य अर्थात् बिलास और ऐश्वर्य के जीवन से वंच गया हूँ। और अब मैं कहाँ तक कहूँ मरा मन सेवा और पूजा में भी नहीं लगता और मानव के सबसे बड़े शत्रु का काम और प्रीति से भी अब मुक्ति मिल गई है। मैं अब राम का नाम भी लेता तथा भक्त कहलाने की भी अभिलाषा नहीं रही। न तो मैं अब चरण प्रक्षालन करता हूँ अर्थात् अब शारीरिक शुद्धि का भी ध्यान नहीं रहा और न किसी देवता की पूजा ही करता हूँ। सच रदास का मत है कि व्यक्ति जो भी काम करता है उसका अभिमान उसे माया बंधन में बाध लेता है। अतएव भवन उसके निकट जाने को तयार नहीं। उपयुक्त कथन द्वारा महात्मा रदास ने इस सत्य की प्रतिष्ठा की है कि अहंकार (Ego) की जाति इतनी सूक्ष्म है कि किसी भी वाय के माध्यम द्वारा वह माया बंधन में किस समय बाध लेगी, कहा नहीं जा सकता। किंतु नाम की प्राप्ति के पश्चात् माया का सारा प्रयत्न छिन्न भिन्न हो गया है। मन अपने धर्म सक्लप विवल्प को छोड़ कर स्थिर हो गया है। जिस परमानन्द की प्राप्ति के हेतु मन इधर उधर भागा भागा फिरता था वह हृदय के अंतर्गत ही प्राप्त हो गया है, तो फिर वह अब कहाँ जाय मन से अहंकार के पूर्ण निरसन का सन्त मत के इस अजपा के अतिरिक्त अब कोई सरल मार्ग हो

सकता है, मरी समझ तो नही आता । “राम” का यह नाम आध्यात्मिक साधना की चरम प्राप्ति है । इसके द्वारा अहंकार रूपी वासुकि नाग का फण सहज ही कुचला जा सकता है प्रायः सभी सत्तों की वानियों में “नाम” महात्म्य के इस प्रकार के उद्गार प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं ।

वस्तु पूरा अहंकार गूँथ होकर ही इस नाम अथवा शब्द की प्राप्ति हो सकती है और इस नाम अथवा शब्द की प्राप्ति ही मुक्ति की प्राप्ति है । बिना इसके छूटकारा नही । सत्ता में बड़ दह विश्वास में साथ इस तथ्य की घोषणा की है कि मास नाम के लिए शब्द साधना आवश्यक है । इस सम्बन्ध में महात्मा गुरु जीवन दास की बानी के शब्द ३१ की निम्न पंक्तियाँ दृष्ट्य हैं—

बिन यहि नाम तर कोउ नाहो ।  
देखहु समुक्ति पूनि मन माही ।  
तीरथ जन बहु नीति कराय ।  
जो प अन्तर दखि न पाय । २ ।  
जल तन धोय मतिगा धाय ।  
मनु यह नाम त निमल होय । ३ ।  
भूल करि पट कम अवार ।  
यागो ते भूला सवार । ४ ।  
सहज होरि जो राख लाय ।  
अंतर मजि तय भक्त कहाय । ५ ।

अपजीवन साहस की बानी शब्द ३१

अर्थात् बिना उम नाम की साधना के कोई मुक्त नहीं हो सकता । इसने अपने मन में साथ समझ कर देख लो । तीर्थयात्रा अथवा प्रकार के व्रत तथा जन द्वारा शरीर का प्रक्षालन केवल बाह्य गृद्धि ही कर सकता है । अतः वरुण अर्थात् वासनाओं की आसक्ति का गृद्धि

तो नाम साधना द्वारा मन की अतमूखी वृत्ति द्वारा ही सम्भव हो सकती है बिना अम्यतर की शुद्धि के बाह्य शुद्धि का कोई महत्व नहीं। बाह्य वमकाण्ट ता रूढ़ होकर आसक्ति का कारण बनता है, और यह आसक्ति ही तो माया है। इन पक्तियों में भी नाम के अतमूखी जप पर ही सकेत द्वारा प्रक्षेप दिया गया है।

मुग इस नाम अथवा शब्द की मायता की महत्ता के विषय में केवल एक ही बात और कहनी है। सत्तो द्वारा स्वीकृत यह नाम अथवा शब्द की साधना प्रायः सभी साधना पद्धतियों से अत्यन्त सरल तो है ही, इसके अतिरिक्त इसी के द्वारा चरम आध्यात्मिक उपलब्धि भी होती है। सन्त दरिया ने बड़ी दृढ़ता और आत्म विवास के साथ इस बात की उद्धोषणा की है। निश्चय ही उनकी यह उद्धोषणा अनुभव की ठोस भूमि पर अधिष्ठित है। सत्त मत के सन्तो ने जो भी कुछ कहा है वह सब उनकी स्वानुभूति का ही परिणाम है। क्योंकि वे बहुधा पढ़े लिखे न थे। इसलिए उनकी अनुभूतियों में अतिरञ्जना नहीं है। नमक मिष्ठ लगाकर अपने अनुभवों को अतिशयोक्ति पूर्ण बनाने की कला उन्हें नहीं आती थी। कबीर ने तो शाम्भू वेत्ताओं को अपने पुस्तकीय ज्ञान के निये इसी हेतु बड़ी पटवार मताई है। वे कहते हैं कि 'तू कहता काण्ड की लखी मैं कहता आँखों की देखी। अर्थात् प्रत्यक्ष के लिए प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। महान सत्त दरिया ने इस नाम को सम्पूर्ण आध्यात्मिक उपनिषदा में सर्वत्र उल्लेखित हुए अपनी बानी 'ब्रह्म परचे का अंग' में कहा है कि—

मन मेरु से बावड त्रिकुटी गग ओंकार ।

जन दरिया हनके परे, ररकार निरधार । १० ।

गन दरिया आवाण लग, आकार का राज ।

महामुग जिसके परे, ररकार महाराज । १५ ।

ओउम अथवा ॐ कार की साधना अथवा ॐ की साधना द्वारा

आर्यादिमक उपलब्धि प्रायः अध्यात्म गत में सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि के रूप में मानी गई है। स्वामी दयानंद सरस्वती ने तो इस 'ॐ' के जप का बहुत ही 'दायक' प्रचार किया है। गीता में भी 'ॐ' के जप एव साधना की महनीयता उक्त कठ से स्वीकार की गई है। स्वामी शंकराचार्य ने भी 'ॐ' के जप का प्रचार में जो तत्परता दिखाई है, वह भी सब विन्ति ही है। किंतु सन्तो ने इस 'ॐ' से भी परे नाम का अधिष्ठान खोज निकाला है। दरिया साहब के उपयुक्त दोनों दोहे सन्तो की इस भावना के प्रतिनिधि के रूप में रखे जा सकें हैं। अपने प्रथम दोहे में उन्होंने 'आकार का स्थान त्रिकुटी में स्वीकार किया है। 'त्रिकुटी' भौहा से समान दूरी पर छोड़ा झटकर भाल पर वह स्थान है जहाँ दूध पिता और सुपन्ना नादिया आकर मिलती हैं। सन्ता ने इस त्रिकुटी को भी महिमा पा बड़ा मान किया है। यही पर उन्होंने आना चक्र की अवस्थिति मानी है। यही से प्रकाश शरत्ता है, यही तीसरा नेत्र है। इसी के द्वारा साधक नाना द्रवि सम्पन्न माना जाता है। ध्यानावस्था में साधक अपने इसी नेत्र द्वारा विश्व ब्रह्माण्ड में विपरीत हुई गुप्त वस्तुओं को देख सकता है। यही पर 'ॐ' का भी है। अर्थात् इसकी सिद्धि आकार का सिद्धि है। किन्तु सन्त दरिया ने इसके भी ऊपर 'ररकार' अथवा नाम को माना है। वे कहते हैं वह 'निरधार' है अर्थात् उसे किसी की अपक्षा नहीं है। वेदांत ने ब्रह्म की प्रतिष्ठा करत हुए स्वाकार किया है कि सर्वाधार निराधार होता है और ब्रह्म ही सर्वाधार है इसलिए वह निराधार है। सन्त दरिया ने भी इसी प्रकार 'ररकार' को निराधार कहकर उसके सर्वाधार होने की स्वीकृति दी है। अस्तु वेदांतियों का जो ब्रह्म है वही सन्ता का नाम अथवा शब्द अथवा राम अथवा 'ररकार' है। दूसरे दोहे में उन्होंने उसकी अवस्थिति महदाकार, महसुप्त अर्थात् महासूय के भी परे मानी है। उनमें कहने का तात्पर्य यह है कि वह महतो

महीयान है ।

मेरी उपयुक्त सम्पूर्ण विवेचना से यह निष्पन्न निकलता है कि सन्ता द्वारा स्वीकृत नाम की मायता भक्ता द्वारा स्वीकृत नाम की मायता से सबथा भिन्न है । यद्यपि वही वही महात्मा सूरदास ने भी अपने एकाध पद में सन्ता के समान ही शब्दों की धर्चा की है । संभव है गोस्वामी तुलसीदासजी तथा महात्मा सूरदासजी ने नाम अथवा वाद की महत्ता सन्तों के समान ही स्वीकार की हो । किन्तु भक्त समाज ने निश्चित रूप में इस रूप में स्वीकार नहीं किया । यह मेरा दृढ़ निश्चय है । सत मत की इस 'नाम साधना' के द्वारा अह का यमन एवं पूर्ण निरसन जिस प्रवेग के साथ होता है वसा अन्य किसी साधना द्वारा नहीं । इसलिए सन्तों ने इसे विहंगम माग कहा है । इससे अतिरिक्त यह भी सिद्ध होता है कि नाम की यह साधना अकार की साधना से भी बराबर है जो अति दीर्घ काल से आध्यात्मिक जगत में स्वीकृत चली आ रही है । इस विवेचन से एक अन्य तथ्य की भी पुष्टि होती है कि योग अथवा साधना के क्षेत्र में सन्तों की यह 'नाम साधना' एक नवन आविष्कार है ।

## सन्त मत की सुरति शब्द साधना और पश्चिम द्वार

‘सन्तो की सुरति शब्द साधना को लेकर हिन्दी के विद्वान् बलाचको तथा अवेपका मे विरोधी मता की अपूर्व प्रदर्शनी देखने को मिलती है। सन्ता के ऊपर इधर पन्द्रह बीस वर्षों से अनवरत अनुशीलन काय हो रहा है। काय परिणाम में जितना अधिक हुआ है, उससे कहा अधिक उनकी साधना का मत सिद्ध और भाग्य हो गया है। इस भ्रम का एक मात्र कारण आलोचकों और अनुशीलकों की एतन् विषय बौद्धिक उपपत्तियाँ रही हैं। अनुमान के सहारे सन्तो की साधना के सबब में किसी प्रकार का निगम देना केवल अनधिकार चेष्टा ही नहीं अत्यन्त दुस्साहस भी है। आत्म तत्त्व का साक्षात्कार यदि बौद्धिक घरातल पर सम्भव होता तो सभी पाश्चात्य दार्शनिक, ग्रन्थ वेत्ताओं की श्रणी में परिगणित होते। इंग्लण्ड के प्रसिद्ध दार्शनिक श्री बर्टेंड रसेन ने अस्सी वर्ष की आयु में तीसरा विवाह किया है और मनीषी दार्शनिक तथा साहित्यकार श्री ऐल्डस हक्सले (Elds Huxley) ने अभी तक के बीमार्थ जीवन का समय तोड़ कर २१ वर्ष की आयु में अचानक एक स्टिलियन वेलावादिका के साथ विवाह कर लिया है। यौन आकषण के मूल में अह (Ego) की स्रूण पाप्मि है। और आध्यात्मिक साधनाओं की पहली शक्त है कि आप निरभिमान तथा पुणनया विनम्र हों। यमेव वणुते तेन लभ्य स्वस्यप आत्मा विवर्णते तनू स्वाम् वनोपनिषत् १ = २३ अथात यह आत्मा न तो वदा के प्रवचन से न मघा स और न बहुव

सुनन से प्राप्त होता है । यह तो स्वयं जिसको धरण करता है, उसी को यह प्राप्त होता है । अतः निष्पन्न यह निष्ठा कि आत्मा का लाभ अथवा अध्यात्म साधना न तो कभी बौद्धिक धरातल पर सम्भव हुई है और न भविष्य में हो सकेगी । और यही कारण है कि पाश्चात्य विचारकों को बौद्धिक उड़ाने बहुत ऊँची हो पर जी अहं निरसन की दिशा में कुछ भी नहीं कर पाई है । इसीलिये वहाँ के बड़ से बड़ दास निक का जीवन अहं की चौहद्दी से पूणतया घिरा रहा है । अतः सत्ता की साधना के विषय में जो-जो निष्पन्न देने के प्रथम यह आवश्यक है कि साधना द्वारा अपनी आत्मा का साक्षात्कार कर लिया जाय । यदि ऐसा नहीं किया जाता तो उक्त निष्पन्नो का अर्थों के हस्ति निरूपण से अधिक महत्व न होगा ।

सत्ता की 'सुरति तथा निरति' के विषय में अभी तक जितने मत मिले देखे हैं उनकी तात्विता निम्नलिखित हैं —

सुरति —

१ स्वर, आशा और भूया ही त्रयश सत्ता की सुरति विरह और निरति हैं ।

२ सुरति—स्मृति ।

३ सुरति—स्मरति ।

४ सुरति—सुष्ठु रति ।

५ सुरति—श्रुति ।

६ सुरति—प्रेम ।

७ अतमु ली—वसति ।

८ सुरति—ज्ञान ।

९ सुरति—योगी की असाधारण दृष्टि क्षमता को कहते हैं । जिसके द्वारा वह असाधारण गहन के आन्तरिक मय दृश्या और शब्दों की साक्षात् अनुमति प्राप्त करता है । डॉ० चर्मोद्भ प्रह्लादचारी शास्त्री, सत पवि दरिया एक अनुशीलन पृष्ठ १ ६

निरति -

१ नृत्य ।

२ निष्कुरति ।

३ - वराग्य ।

४ यहिमुखी वति ।

५ लप ।

६ निरति सुरति से मित निर्विकल्प ध्यान की अवस्था है जिसमें दशायली नई नहीं प्रकट होती । डा० धर्म द्र ग्रन्थकारी सत षड्विंशतिया एक अनुशीलन पृष्ठ १०६ । सुरति' तथा 'निरति' के विषय में उपयुक्त तालिका के उद्धरणों द्वारा मुझे किसी भी मत का खडन मन्न अभीष्ट नहीं है । और न उसके लिए इस लघु निबन्ध में अवकाश ही है । मुझे तो उपयुक्त उद्धरणों द्वारा केवल यही दिखलाना है कि अपने निष्कर्षों में निरति भी दो विद्वानों का मत में साम्य नहीं है । और इसी से यह सिद्ध होता है कि उनका उपपत्ति या बुद्धि-प्रसूत है । किन्तु सत की मायताओं में कहां भी भेद दृष्टि योग्य नहीं होता है । गुरु की महिमा का ही लीन होकर, 'नबीर' से लेकर आज तक सभी सत एक स्वर से स्वीकार करते आ रहे हैं । एतदविषय उनका कुछ उद्धरण मैं नीचे देता हूँ —

१ गुरु गोविन्द दोना छडे कावे लागू पाय ।

बनिहारी वा गुरु की जहि गोविन्द दियो मिलाय ।

२ दिन सदगुरु काउ भन न पावा,

घरतो से आकास लो पावा । बज्रहन

३ दादू काढ़ माल मुख अये लाचन दोळ

दादू एसा गुरु मिल्या जीव ग्रह बरि लेय । दादू

४ सतगुरु आदि आदि हैं, सतगुरु मध और मूल

सतगुरु को सिजदा करू, एक पत्र नहि भूल । गरीब दास



उपयुक्त उद्धरण म जहाँ सभी स तो ने गुरु की महत्ता पर अपनी श्रद्धा तथा प्रगति अर्पित की है वही यजना द्वारा यह भी बतला दिया है कि बिना गुरु की कृपा से साधना म सिद्धि नहीं प्राप्त की जा सकती । अतः सत मत साधना की पीठिका पर अधिष्ठित है । बुद्धि के बल म इसकी अनन्तता का नर्हा घरा जा सकता ।

गुरु की महिमा की स्वीकृति के अतिरिक्त वे इन्द्रा, पिंगला, सुषुमा, शक्ती, ब्रह्मसूत्र, यनत्र, ररकार, कमल तथा चक्र आदि शक्तियों का प्रयोग भी एक ही अर्थ म करते आए हैं । किन्तु उपयुक्त परिभाषिक शक्तियों के अतिरिक्त सभी सना म पछिम द्वारा या पश्चिम द्वार का प्रयोग भी समान रूप से प्राप्त होता है । इस शब्द की ओर मेरा ध्यान आकस्मिक रूप से कल्याण के साधनाक में डा० सम्पूर्णानन्द के निबंध सत मत म साधना को पढ़ने समय आकृष्ट हुआ । श्री गम्पूणानन्द द्वारा उद्धृत पदों के अतिरिक्त मुझे कबीर म भी यह शब्द पूर्व अर्थ म ही प्रयुक्त मिला । आनाचक तथा अनुशासकी ने या तो इस शब्द को समझने का प्रयत्न दो नहीं किया, और जिन लोग ने इसका अर्थ करने की चेष्टा भी की है तो उनकी 'यारया अर्थ परिभाषिका' की 'यारयाओं के समान ही सदिग्ध है । डा० सम्पूर्णानन्द द्वारा उद्धृत पद एक श्री गरीब दास जी का है और दूसरा उनके दादा गुरु बाबा रामलाल जी का । श्री गरीब दास जी का पद अधिक बड़ा है इसलिए मैं उसकी केवल वे ही पंक्तियाँ उद्धृत कर रहा हूँ जो मेरे प्रमाण के सदृश म हैं और श्री बाबा रामलाल जी का सम्पूर्ण पद ।

१ दत्तन श्रेष्ठ म दीपक जोहू, उत्तर घरु घियाना ।

पछिम देश म देवल हमरा पूरब पथ पयाना ॥

विड ब्रह्मांड दोट से 'यारा, अगम ग्यान गौहराऊ दास गरीब अगम गति आव सिख सिप मिनाऊ,

--महार्मा गरीब दास

२ मूल मग करि उघ बिचारी । पट चरहि नव सोधहि नारी ।  
सोधि क मरु दंड ठहराना । सह्य मिलाव प्राण अपाना ।  
बक नाल गहे मन मूना । बिहस अष्ट कमल दत्त फूसा ।  
पदिम दोसा लागि बिचारी । सत कुंती सा तेहु उधारी ।

बाबा रामलाल दास

३ उपयुक्त दोनों पदों के अतिरिक्त कबीर ने भी 'पश्चिम द्वार' की महत्ता की ओर रहस्यात्मक संकेत दिया है। उनका पद इस प्रकार है।

शिव की पुरी बस बुधि सारु ।  
सह तुम मिलि न करहु बिचारु ।  
इति उन की सोझी पर ।  
बडन करम मेरा बरि करि मर ।  
निज पद ऊपरि लागो धिआनु ।  
राजा राम गुनु मोरा ब्रह्म गिआनु ।  
मूल दुआर बधिया बधु ।  
रवि ऊपर गहि रक्षिया चहु ।  
पछिम दुहारे की सिल ओढ ।  
विहि सिल ऊपर छिडकी अउर ।  
छिडकी ऊपर दसवा दुआरु ।  
बहि कबीर साका अन्त न पारु । कबीर

उपयुक्त तीनों पदों के उद्धरण साधना-परक हैं। निश्चय ही इनमें साहित्यिक सौंदर्य का अन्वेषण करने से घोर निराशा होगी। और अपनी इस अध्यात्म परता के कारण ये अथवा इसी प्रकार की सभी की रचनाएँ, केवल साहित्यिक की बुद्धि वृत्त के अन्तर्गत नहीं

समा सन्ती । और इसीलिए केवल साहित्य के विद्यार्थी को अपनी सीमाओं का ध्यान रख कर ऐसी रचनाओं के विषय में अपना मत निर्धारित करना चाहिए । नहीं तो वह सत्य के उद्घाटन में तो सत्रया असमय रहेगा ही । उल्टे एक ऐसे भ्रामक शब्द जाल की सृष्टि पर टांकेगा जो न केवल विरथक होगी, बरन सत्य के साक्षात्कार करने वाले के मान में एक बाधा भी उपस्थित करेगी ।

सन्तों के इस पश्चिम द्वार से इनकी 'सुरति' का 'व्यजपा' की साधना से घनिष्ठ सम्बन्ध प्रतीत होता है । उपर्युक्त तीनों उद्धरणों में इसकी महत्ता स्वीकार की गई है । क्योंकि तथा थावा रामनाथ जी ने तो इसके ऊपर विशेष प्रवचन दिया है । वाश रामनाथ जी ने पश्चिम दीक्षा गति विचारों । सतगुरु की सन लेहु उधारी कह कर माना सत्ता की साधना को निम्नत स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है । 'पश्चिम द्वार के विवाह की स्थिति का शरीर में पता लगाने के पहले, हम शरीर की दिशा को समझना होगा । शरीर में दिशाओं की अवस्थिति सन्तों में किस प्रकार मानी है । इसका ठीक ठीक ज्ञान धटकल के आधार पर नहीं हो सकता । जिस प्रकार चाका सम्पूर्ण साधना मार्ग गुप्त रहता गया है । उसी प्रकार उनकी शिक्षा की करतूत भी अत्यन्त रहस्यात्मक प्रतीत होती है । सन्तों ने अपनी साधना के विषय में प्रायः सन्तों में बात की है । उनके कुछ गुप्त प्रतीक हैं जिन्हें वे सावजनिक रूप में नहीं देना चाहते थे । उन प्रतीकों अथवा संकेतों की व्याप्ति केवल उनके अधिकारी शिष्या तक ही परिमित है वही उसे समझ सकते थे । उन्हीं को समझना सन्तों की अभीष्ट भी था । सावजनिक बना कर वे अपने योग मत की वदमना नहीं करना चाहते थे । वे इसे मली भाँति जानते थे कि योग साधना के वास्तविक जिज्ञासु कोई विरले ही होते हैं । इसलिए वे सोने की मुद्राल को धूरे पर नहीं चलाना चाहते थे । अस्तु प्रतीकों की इस रहस्यमयी भाषा को समझन के लिए किसी सिद्ध सन्त की शरण लेनी

पड़गी। उससे यह भेद जान लेने पर ही इन रहस्य मय प्रतीकों के विषय में कुछ अधिकार-पूर्ण लिखा जा सकता है।

इस "पश्चिम द्वार" के द्वारा एक और महत्वपूर्ण बात पर प्रकाश पड़ता है। बबौर तथा अन्य सत ब्रह्मा की साधना के विषय में प्रायः विद्वानों ने यह कहा है कि वे हठयोग करते थे। सतना के आलोचकों को यह भ्रम उनके द्वारा प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों 'ड्डा, पिगला कुडलिनी चक्रों तथा कमलों के कारण हुआ है। किंतु "पश्चिम द्वार" का 'सत गुरुजी से उद्धरण यह सिद्ध करता है कि "परण्ड सहिता" तथा 'हठ योग प्रदीपिका' में वर्णित 'हठयोग की प्रणाली से "सुरति शब्द के योग की साधना संभव्य भिन्न है। आसन तथा प्राणायाम के द्वारा कुडलिनी उद्वेगन तथा पट चक्र भेदन का जो हठ योग का मार्ग है उससे इस विद्वगम मार्ग का कोई सम्बन्ध नहीं।

अतः सन्ता के आलोचकों तथा अनुशीलकों से मेरा विनम्र निवेदन है कि वे उपयुक्त दार्ष्टिकोण के द्वारा भी सत साहित्य को देखने की चेष्टा करें। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि नादानुसंधान का यह मार्ग अत्यन्त प्राचीन होते हुए भी कभी संवर्जनहीन बनाने का प्रयत्न नहीं किया गया है। और इसीलिए अन्य विद्वानों के समान इसकी स्पष्ट तथा व्यवस्थित प्रश्रिया नहीं मिल सकती। अतएव हम बाह्य साक्षियों को छोड़कर सन्ता के मत के लिए सतों की ही गवाही लेनी पड़गी। उन्हीं से पूछा जा सकेगी पड़गी। ऐसा न करने से हम चिर काल तक उनके मत का अनर्थ तथा उनके साथ अधर्म्य अन्वय करते चले आयेगे।



# सन्त मत में सुरति, निरति और सहज समाधि की मान्यता

सन्त मत के शोधकों ने सन्तों द्वारा प्रयुक्त अथ पारिभाषिक शब्दों ( इष्टा, विगता सुषम्ना वृद्धिनी आदि ) की विस्तृत व्याख्याएँ की हैं। किन्तु वे उनके सुरति, निरति और सहज समाधि पर सम्बन्ध प्रकाश नहीं लात सके। इसका प्रमुख कारण बदाचिन यह रहा है कि उनकी ये उपपत्तियाँ उनकी ( सन्तों का ) साधना पद्धति की जानकारी न होने के कारण बौद्धिक हो रही हैं और इसी कारण वे इन शब्दों के लिए कोई तथ्य पूर्ण बात नहीं कह सके। हमारा इन शब्दों के विषय में यह मत है कि बिना इसके पूर्ण ज्ञान के कोई भी सन्त मत के साथ-साथ नहीं कर सकता। सन्तों के ये शब्द उनकी साधना के मूल दण्ड हैं। हम यहाँ पर इन शब्दों की व्याख्या क्रमशः उपस्थित कर रहे हैं।

## सुरति

सन्त वाक्य में सुरति शब्द का प्रयोग जितनी बहुलता और विभिन्नता से हुआ है। उतना बदाचित ही किसी अन्य शब्द का हुआ होगा। किन्तु हम तो इस विभिन्नता में भी एक मोतिब एकता प्राप्त होती है। सन्तों के आलोचना न इस शब्द की अनेक विधि-पाठनायें और व्युत्पत्तियाँ उपस्थित करने इस प्रसंग का अत्यधिक अहित बना दिया है। इसका प्रमुख कारण असा कि हमने ऊपर यह है उनकी बौद्धिक उपपत्ति रही है। 'सुरति' शब्द का जिन अर्थों में ग्रहण किया

जाता है, उनकी स्थूल तालिका इस प्रकार है ।

(१) सुरति—स्मृति

(२) सुरति—प्रेम जोड़ा

(३) सुरति—श्रुति

(४) सुरति—चित्त प्रवाह ( सुरति का उदभव सोत से होने के कारण )

इसमें कोई सन्देह नहीं कि सुरति शब्द का प्रयोग थोड़ा बहुत हेर फेर करके नाको और सत्ता म इन्हीं अर्थों में प्राप्त होता है । किन्तु सत्ता के आलोचकों ने इस शब्द को पारया के लिए, जितना प्रपञ्च मापा ब्रह्मानन्द और व्याकरण पारया पर दिया है उतना इसके भाव पर नहा दिया । स्मृति और चित्त प्रवाह के रूप में मन की एक ही स्थिति का स्वरूप निश्चित होता है । सासारिकता का मोह त्याग कर मन का परमात्मा से मिलने का रूपक सत्ता न अनेक स्थानों में रहता है । मन का सासारिकता से मोह छोड़ कर परमात्मा में अनुरक्ति दिखलाना ही प्रेम जोड़ा है और वही सुरति योग है । सुरति का श्रुति के रूप में प्रयोग सुरति शब्द-योग ने प्रसंग में रख कर देखने से स्पष्ट हो जाता है । अर्थात् सुरति ( स्मृति ) का सदैव शब्द में लगा रहना 'सुरति शब्द योग' है । यहाँ शब्द के साथ सुरति का प्रयोग सुना के ही अर्थ में है, क्योंकि शब्द सुना ही जाता है । मरी उपर्युक्त व्याख्या केवल एक ही निष्कर्ष पर पहुँचती है कि सत्ता ने इस शब्द का प्रयोग केवल एक ही मतार्थ के लिए—अपने मन का सासारिकता से विमुक्त करके आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख करने के लिए किया है । हमने अत्यन्त बड़ा है कि सत्ता को उलट पार सुरति शब्द योग की पर्याय है । हमारा मन प्रवाह अपने स्वभावानुसार रूप में सासारिकता की ओर विपणन रूप से अनुरक्ति निखलाता है । इसका प्रमुख कारण यह प्रतीत होता है कि हमारी विषय ग्राहिणी सभी

इन्द्रियाँ बहिर्मुखी हैं। जस्तु इस बहिर्मुखी चित्त-प्रवाह को शब्द के साथ नियोजित करके अन्तर्मुखी बनाना सुरति शब्द योग है। शब्द के प्रति सदैव सुरति (गयाल स्मृति) बने रहने के कारण ही हम इसे स्मृति शब्द-योग भी कह सकते हैं।

सुरति शब्द योग अथवा नानानुमधान के योग की परम्परा सिद्धों नामा से भी अधिक प्राचीन है। खोजने से तो इसका स्वरूप का यत्किंचित शोध वदो म भी प्राप्त हो सकता है। किन्तु उपनिषद् काल से तो इसका इतिहास किसी न किसी रूप में कमवद्ध प्राप्त होता ही है। नाद विन्दु उपनिषद् के अतिरिक्त छांदोग्य उपनिषद् में भी इस योग की प्रणाली का उल्लेख मिलता है। वह 'लोक' इस प्रकार है —

‘तस्येपा श्रुतियप्रतत्कर्णावपिगण्य निनमिष नदथुरिवात्नेरिव ज्वलतउपधर्षोति । (छांदोग्य ३।१३।८) अर्थात् (योग साधना की अवस्था में) कर्मेन्द्रिय के विरुद्ध होने पर योगी की आदल की गजन की भाँति, मयम के नाद की भाँति ज्वलती हुई अग्नि की सरसराहट या कुत्र सुनाई पड़ना है यह उस ग्रह की आहृद ध्वनि है।

सिद्धा न इस शब्द का प्रयोग यद्यपि प्रमत्तीका के रूप में किया है किन्तु फिर भी जसा कि हमने ऊपर कहा है इसकी 'यादना आत्मा परमात्मा के मिलन के रूप में ही लनी चाहिये। सिद्धा ने अपने योग की परम्परा को गुप्त रखने के लिए ही इस प्रकार के मधुर सासारिक आ-छादन से उस आ-छादित किया था। सिद्ध सरहपा इमे कमन-कुनिश योग की सगा देते हुए उस प्रकार स्वीकार करते हैं।

कमल कुलिश वविमज्ज ठिउ जो सो सुरज विलास ।

कोतर यह वहि तिनअसे हिवरण पूरइ आस ।

सिद्धों के अतिरिक्त नाथ संप्रदाय में तो इस याग की प्रणाली का नाम 'शब्द सुरति योग' अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित रहा है। अमरीष शासन में इस प्रणाली को सहज समाधि प्राप्त करने वाल मार्ग के रूप में स्वीकार किया गया है और जिसम शब्द को साधना पर अधिक बल

कि मौन मार्ग द्वारा आध्यात्म की चरम उपरति सम्भव नहीं है। इस मार्ग में कुछ समय के लिए मनोन्मत्तता सम्भव है किन्तु आश्रित मनोन्मत्त तभी सम्भव है जो वासनाओं का अहं का पूर्ण निरसन हो जाय। इसीलिए माध्यात्म का क्षेत्र में उनका सतत प्रयास जारी रहा है और उन्होंने विहंगम मार्ग में अहं के पूर्ण निरसन द्वारा आत्म तोष प्राप्त किया।

विहंगम मार्ग के लिये दाहे में बँवव इतना ही साकेतिक उत्तेज प्राप्त होता है कि “मूर्ति जाय विहंग है। जानन परम प्रसीन अर्थात् ‘सुरति शास्त्र’ के माध्यम से जप की प्रक्रिया को विहंगम कहते हैं, जैसे केवल ‘परम प्रसीन ही’ मानते हैं। इस प्रक्रिया के जप को पारिभाषिक शास्त्रों तक ही सीमित रखा है। उसके रहस्य को उद्घाटित नहीं किया। वह तो प्रायः श्रमक कला तथा विज्ञान के लिए अधिकारी व्यक्ति की ही आवश्यकता होती है किन्तु आध्यात्म मार्ग में अधिकारी की छानबीन का सर्वाधिक आग्रह है। आजकल आध्यात्मिक क्षेत्र में एक नारा अपने पूर्ण प्रवेग के साथ धूम आया है वह नारा है मिशनरी स्प्रिट अर्थात् मसार की फाड़ भी वस्तु घोषणीय न रहनी चाहिए। उस सब सुझाव बनाना चाहिए और जो ऐसा नहीं करते उन्हें नृदिवासी भाँति विनोदना से अलङ्घन किया जाता है। इस विचार द्वारा को प्रभावित करने के लिए अनेक मिशनरियों की स्थापना की गई है। इन मिशनरियों द्वारा आध्यात्मिक प्रचार का नती स्वविनापन अपनी करमायस्या पर पहुँच गया है। अस्तु आध्यात्मिक प्रक्रियाओं को घोषणीय रखने के लिये मूल में कथिमा का एक गहरा उद्देश्य रहा है और वह उद्देश्य यह कि बड़ा अनविज्ञारी के हाथ में पड़कर समाज में इसका दुरुपयोग न हो। कही सिद्धियाँ के चमत्कारों के प्रदर्शनों द्वारा आध्यात्म की गन्त मायता न हो जाय। और ऐसा हुआ भी जिसका प्रभाव आजकल भी कम नहीं है। साधारण जनो की तो बात ही छोड़िये सुधी जन भी चमत्कार का ही आध्यात्म मान लय है



और नम हारी व्यक्ति को ही पहुँचा हुआ अध्यात्म सिद्ध कहते हैं। मेरे उपर्युक्त बचन का मात्र प्रयोजन यह है कि प्राचीन ऋषि उपर्युक्त कारणात् साधना प्रक्रिया का भावबोध बनाना नहीं चाहते थे। वे जिनाशु के समस्त उसकी पूर्ण पराक्षा के पश्चात् ही साधना रहस्य का उदघाटन करते थे। और इसी कारण आज तक योग सिद्धान्त की सस्थाओं का ज्ञान तर नहीं मुना गया। अस्तु उपर्युक्त आहे मैं भी विहगम मार्ग की प्रक्रिया का उदघाटन न करके गारिभाषिक शास्त्रों के द्वारा सन्त मात्र करने में प्राचीन प्रणाली का अनुसरण किया गया है।

जसा कि ऊपर कहा गया है आध्यात्मिक साधना की उपरान्धि मनोलय द्वारा 'अह' का पूर्ण निरसन है। पिपीलिका मोन और विहगम मार्ग की आध्यात्मिक साधनाओं द्वारा भी अह को निमूल करने का यत्न किया जाता है किन्तु जसा कि ऊपर कहा गया है कि पिपीलिका और मोन मार्ग के द्वारा अह का पूर्ण निरसन प्रायः सम्भव है। क्योंकि ये मार्ग बाह्य उपकरणों की सहायता में विन्यास करते हैं। इनका पूर्ण 'अहवार' (Attachment) अभी नहीं छटा है। इन्हें अपने अस्तित्व का भी ज्ञान है और दूसरे की स्थिति भी स्वीकार करते हैं और निश्चय ही इस दृष्टि से उनके मन की वृत्ति का पूर्ण निग्रह अममय ही प्रतीत होता है। तब तक मन की वृत्ति पूर्ण तथा निर्विकल्प नहीं हो जाती तब तक पूर्ण मनोलय हो ही कस सकती है? इसलिये मन को बेमल करने के लिये उस निर्विकल्प साधना मार्ग में नियोजित करना होगा। उस निराश्रित तथा निरावश्यक करना होगा क्योंकि सर्वाधार निराधार है, अतएव उसकी प्राप्ति के लिये भी किसी प्रकार के विकल्प अथवा विषय को नही स्वीकार किया जा सकता। मुनि शास्त्रों के मार्ग में अविविचार तथा प्रतिष्ठा में आध्यात्म मार्ग की चरम प्राप्ति का उपघोर निराश्रित ज्ञान है। पशु इसके दूर कि मैं जगत् प्रक्रिया पर प्रमाण ज्ञान यह आवश्यक प्रमाण है कि ज्ञान रूप

के कुछ अथ प्रकारों पर भी विचार कर लिया जाय। क्योंकि 'अजपा जप' के प्रकारों के अंगन साधना का सभी सूक्ष्म प्रक्रियाओं महीत होती है। मीन ऊपर कहा है कि पिपीलिका मार्ग अथवा स्थूल उपकरण का माध्यम से मन का समय का अतिरिक्त जितनी सूक्ष्म प्रक्रियाएँ हैं व सभी अजपा के अन्तर्गत स्वीकार की जानी चाहिए। सभी प्रकार के मानसी उप अथवा साधनाएँ 'अजपा जप' के अन्तर्गत आती हैं। अजपा जप में हाथ और जिह्वा का बिन्दु प्रयोग नहीं होता। और माँसी जपों की भी यही परिभाषा है। इस प्रकार के जप अनेक हैं। उदाहरणार्थ श्राम से उप, ब्रह्मा का ध्यान घाटक आदि रखे जाते हैं। इसी अनुक्रम में बचीर आदि सत् ऋषियों द्वारा प्रतिष्ठित 'सुरति श्रम' का अजपा भी आता है।

१६५ ई० के अगस्त के समाचारक में श्री विश्वम्भरनाथ उपाध्याय का एक निबंध 'अधीन उपनिषद् और सन्त धर्मेण मत शीपक' से प्रकाशित हुआ है। उसमें अजपाजप का स्वरूप का उल्लेख करता हुआ विष्णु संस्कृत कहता है कि, ध्यान बिन्दु उपनिषद् में अजपाजप का वर्णन बहुत ही सुन्दर रूप से किया गया है —

‘हृदयेण बहिर्प्राप्ति, सन्तरेण विराग्यु  
हम हृदयेषु भक्त जीवो जपति सदा’

उपयुक्त श्लोक की व्याख्या करने हुये जेम्स अगती पक्षिया में कहता है कि जीव प्रत्येक क्षण हम 'हम' (मैं या हूँ) यह जप करता रहता है। प्रत्येक श्वास प्रश्वास में यही ध्वनि नासली रहे यही अजपा जप है। स कहने से वाद का प्रवेश हो व ह कहने में वाद बाहर जाय वम यही अजपाजप है। और इसी अजपा के जपों से। कुछ विद्वान् अज्ञान का उपयुक्त स्थापना में धर्मेण विरोध है क्योंकि जहाँ वह कहते हैं कि यह भी अजपा जप है वहाँ

मरा विनम सनाधन हे कि यह भा अजपाजप है । कि तु कबीर हय अजपा जप के असदिग्ध रूप से 'जपो नहीं ये ।

उपयुक्त अजपा जप की प्रणियात्रा को मीन मार्ग तगत मिया गया है जसा कि मरे नारा उदधत दोह से स्पष्ट है । मीन मार्ग को स्पष्ट करते समय इस प्रक्रिया पर प्रकाश डाला जा चुका है ।

जसा कि ऊपर कहा जा चुका है सतमत म विहगम मार्ग को ही प्रतिष्ठा मिली थी । कबीर न स्वयं ही अपने साधना मार्ग का उल्लेख करते हुए कहा है —

जपा मर अजपा मरै अनहद हू मरिजाय ।

मुरति समाधी शब्द में ताहि काल नहि लाय ॥

उपयुक्त दाह से स्पष्ट है कि व अजपा की अन्य प्रक्रियाओं को भुक्ति का साधन नहीं मानत । उनकी आस्था केवल मुरति शब्द का अजपा म ही है । अम्बु कबीर का साधन मार्ग ध्यान विन्दु उपनिषद् म उल्लिखित अजपाजप से पूगतया पथक है ।

सत्ता न अपने साधना मार्ग को विहगम मार्ग कहा है । जिस प्रकार सभी आकाश म निराधार उड़ता है उसी प्रकार लक्ष को उद्दिष्ट करके मुरति रूपी सभी भी बिना किसी विग्रह अथवा विकल्प के निराधार उड़ता है । इसीलिये इस योग की चरमउपलब्धि समाधि का निर्विकल्पक है । शब्द म मुरति की सावकालिक निरति को कबीर आदि सत्ता सहज समाधि के नाम से अभिहित किया है । किसी भी स्थूल नाम अथवा विग्रह का साधना का माध्यम बना कर निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति नहीं हो सकती और न ऊपर उल्लिखित सत्य अथवा अन्तर के मवाधार स्वरूप का अनुभव किया जा सकता है जिसकी अवस्थिति निराधार मानी गई है ।

सत्तों को मुरति शब्द ज्ञान की साधना प्रक्रिया के महात्म्य

गान से तपि नहीं होनी । वे उस गन्ग कठ से अनेक बार स्वीकार करते हैं । नीच की पत्तियों में उसका नाम के प्रति इन महिम उदगारों का यत्किंचित् बर्णन किया जा रहा है । शत्रु बाण से आहत महात्मा केशवदास जा अपने 'अमिय घूट' में उसकी मूर्त्ति स्वीकार करते हुए कहने हैं ।

छन्द-निरगि आपु अपानि नहो सबल सुख रस सानिय ।  
पिषहि अमल मुरति भरकरि सत बिरला जानिय ।  
काटि बिनु अनत ब्रह्मा सदा सिब रहि ध्यावही ।  
साइ मिलउ सहज सटप 'कैसे' अनद मयन गावहा ।  
( अमीघूट प० ३ )

अथवा

मुरति मयानी ब्रह्म म, लुविधा रह्या न काम  
कशव मम्भलि सत म पर सो सम्भनि हाय  
सात दीप नव सण के उपर अगम अवास  
शत्रु गुरु केशव भज गो जन पाव वास  
ऐसा सत काइ जागिहैं सत शब्द मुनि सह  
केशव हरि सो मिलि रहो 'याछावरि करि देह

( केशवदास जी की अमीघूट साखी पृष्ठ ११ )

अलबिन्दर प्रस, प्रयाग ।

उपयुक्त उद्धरणों में महात्मा केशवदास ने मुरति शत्रु के प्रति जो दृढ़ आस्था प्रकट की है उसका पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं । निम्नलिखित उनकी यह आस्था जारी बल्लना मात्र ही नहीं है बरन् उसकी पटलभूमि में साक्षात् अनुभवात् ज्ञान निष्कप भी सम्मिलित है निश्चय ही महात्मा न साधना की अथ पद्धतियों का प्रयोग करने के पश्चात् ही मुरति शत्रु की साधना की मूर्धन्य कला का

साहस किया होगा ।

महात्मा केशवदास १ अतिरिक्त अथवा सत्ता ने भी उस साधना माग की सर्वापरि मरुता मुक्तक से स्वीकार की है । उस स्थल पर दो एक के उपाहरण दे देना यत्रासक्ति न होगा । महात्मा कबीरदास 'नाम अथवा शब्द' रूपा घूटा पीकर पावन हो गए हैं । निम्नलिखित पद में उनकी उही के मुख से सुनिए —

गुरु माहि पु टिया अजर पियाई । टेक  
जब स गुरु माहि पु टिया पियाई, भई मुचित मरी दुचिताइ  
नाम औपधि अघर बटारी पियत अघा कुमति गई मोरी  
ब्रह्मा बिनु पिय नहि पास, खोजय सम्भू त म गवाय  
मुरत निरत कर पिय जा कोई कह कबीर अमर हाय मोई

अर्थात् गुरु ने मुझ शब्द घटी पिला दी है । जब स उ होन मुख यह घटी पिनायी है मन न अपन सकल्प विकल्प का छोड़ दिया है और उसकी निविधा भिन्न रह्ये । मन अघर रूपी बटोरी से नाम रूपी औपधि का पान कर लिया है और उसका तपित भर पीने के पश्चात् मरा कुमति चला गई है । आग की पत्तियाँ में कपि उस नाम की दुर्लभता की वर्णन करता हुए कहता है उस नाम रूपा घूटी की खोज में ब्रह्मा बिष्णु और गंहना ने अनेक जग व्यतीत कर दिया है । बिनु उस पिर भी प्राप्त नहीं कर सक । अंतिम पक्ति में कबीर ने उमक प्राप्त करने के रहस्य का उद्घाटन करते हुये कहा है कि, मुरति निरतर नृत्य में निरत करके अघात मुरति का निरतर शब्द के साथ तियागित करने का नाम रूपा घूटी का पान करेगा, वह अमरत्व को प्राप्त करेगा अर्थात् वह आवागमन के चक्रार से मुक्ति पा जायेगा ।

सन्तमत की साधना में प्रतिष्ठित यह 'शब्द' साधारण महत्व का

नहीं है। वरन् य इस सृष्टि के उदभव से लेकर विनाश तक समय काय, यापार का प्राण माना -। इस सम्प्रभ कबीर का निम्न लिखित पद उल्लेखनीय है —

साधो शब्द साधना कीज।

जहि सँ ने प्रगट भय सब सोई यहि लीज। टेक ॥

सँहि गुरु सँ सुनि मिय भय सँ मो बिरला सुन।

साइ मिय सोइ गुरु महात्म, यहि अ तगति मूसै ॥१॥

सबद बंद पुरान कहत है, सँद सब ठहराय।

सँ सुर मुनि मात कहत हे, सँ भद नाहि पावै ॥२॥

सँ सुनि सुनि भय घरत है, सँ कहे अनुयाय।

गट दरसन सब सँद कहत है सँ कहे परायी ॥ ३ ॥

सँ माया जग उतपानी सँ केर पसारा।

कहे कबीर यह सँ होत है, तीन भद नै मारा ॥४॥

(कबीर साहब की शब्दावली, पृष्ठ ४ सँ ७)

बोवेडियर प्रस, प्रयाग।

कबीरदास का उक्त 'शब्द' में शँ की महनीयता का मागधिय उपस्थित किया गया है। उनकी मागता का अनुसार सृष्टि का भी काय बिना शँ के नहा हा मवता। शँ का ताना बाना सृष्टि के भाग जुटा का वाय है किन्तु अतिम पक्ति में कबीरदास जो गज विचित्र बान की ओर संवत करत है। व कृत है कि मिय स्थान सँ सँ का स्फरण होना है उसका मद बिगुन 'मारा है। विशय ही उनका मवेत 'सुरति शँ की साधना का आर। जिसकी साधना प्रथिया सदा स ही गुप्त चली आई है। कबीर द्वारा प्रयुक्त 'भद' शँ इसी ओर इंगित करता।

सुरति शब्द व अन्तरा के रूप म 'पलटू साहित्य की बानी स  
एक कृष्णलिया उदधत बर' इम प्रमग का समाप्त किया जा रहा है -

सलु सिताबी पाग तू बीती जात बहार ॥

बीती जात बहार सबत लगन पर आया ।

सीज दुषक बग़ाय मुभग मानुम तन पाया ॥

संसा घूँघट खालि साज पागुन म नाहा ।

नइ व ड करिहै साज काज ना सपनउ माहो ॥

प्रम की माट भराय सुरति की कस पिचकारी ।

ग्यान अंधोर बनाय नाम की दीज गारी ॥

पलटू रहना है नही सुपना यह ससार ।

लेख सिताबी पाग तू बीती जात बहार ॥

जहाँ प्रतीक और स्वरूप योजना का उपयोग कृष्णलिया म सगुक्ति  
रूप उत्कृष्ट भाव की मूर्ति करता है, वहाँ सुरति शब्द (नाम) की  
प्रतिष्ठा करने म भी अनुपम है । सुरति शब्द की साधना सम्बन्धी  
इतनी विवचना पर्याप्त है ।

दो शब्द इस साधना की उपनिषद् व मन्त्र पर कह कर इस  
निबन्ध को समाप्त किया जा रहा है । प्रायः सत्ता के आलोचका न  
सुरति शब्द की साधना का निगुण या निगुणिय सत्ता की साधना  
कहा है । उनके म कथन का तर्क सत्ता व उपर नीरसता का आरोप  
होता है वही इस साधना पद्धति पर नीरसता का नाश भी करता  
है । इस उत्तर म गुप्त भाव प्रकट हो रहा है कि इस प्रणाली व  
विरक्त सत्ता भी (क्योंकि इस भाग व अनुयायियों म गृहस्था की  
संख्या विरक्तों से अधिक है) वभी घरदार छाड़कर विरक्त हान के  
लिए किसी म न्याय । और उह संवधा निगुण मतावतम्बी भी  
बचना औचित्य की मर्यादा का उत्पन्न करना है । वास्तव म इस  
साधना पद्धति म भक्ति और ज्ञान जयवा भावना तथा बुद्धि का परम

समय प्राप्त होता है। नीचे के उद्धरणों में यह कथन की पुष्टि हो जायगी। भक्ता सहजाबाई श्री परमास की शिष्या थे। मन्नामा चरणदास का हिन्दी भावार्थ ने निगुणिय सत् माना है। भक्ता सहजाबाई की धानी में 'निगुन सगुन मजय निवारण भक्ति का अंग स्तम्भ में राम और कृष्ण के अवतार का स्वीकार करनी सहजाबाई कहती हैं—

कहा कहूँ कहा कहि सकूँ अवतरज अउस अवत ।  
सुन धनभो सा गग, सहजा सह्य अलेख ॥  
वही आप परगट भया, ईश्वर लीलाधार ।  
माहि अजु या ओर उज, कौतुक बिष अपार ॥

इतना ही नहीं—

चार बीस अवतार हरि जन की करा सहाय ।  
राम कृष्ण पूजन भय, महिमा कही न जाय ॥

(सहजाबाई का बानी पृ० ४०)

प्रत्यक्षियर प्रस इलाहाबाद

इसके अनिश्चित साधना के प्रमाण में वह अपने साक्षात्कार का स्वीकार करती हुई कहती हैं—

दा पग धर्या जगत का लागि रहै निरन ।  
हुटव मरु दुम लत है वस पाव जन ॥  
कम पाव जन बिना साधू की मगत ।  
दुनिया रय पतग मजाठा गुरु की रगत ॥  
जन्म मरन ता सू घुट सहजो दरस राम ।  
चौरासी के छ मित पाव निजपुर घाम ॥

सहजाबाई राम के द्वारा गतों द्वारा प्रतिष्ठित जाकी की ओर स्पष्ट मनेत है। सहजाबाई अनिश्चित भक्ता भीराबाई के पदों से सभी भक्ता, साध्वियों तथा सगीतों के वर्णन करने हुए हैं।



सुरति शब्द का अर्थ है विषय में पलटू साहब की बानी से एक कुटिलिया उदघट कर। इस प्रमग का समाप्न किया जा रहा है -

सलु सितायी फाग तू बीती जात बहार ॥

बीती जात बहार सत्त लगन पग आया ।

सीज दुपक दयाय सुभग मानुम तन पाया ॥

सलो घू घट खालि साग पागुन म नाहा ।

जइ कोउ करिहै नाज बाज ना सपनउ माहो ॥

प्रम की माट भराय सुरति की बस पिचकारी ।

ग्यान अभीर बनाय नाम की दीज गारी ॥

पलटू रहना है नहो नुपना यह ससार ।

सलु सितायी फाग तू बीती जात बहार ॥

जहाँ प्रतीक और रूप याचना का उपयुक्त कुटिलिया में सगुणिक रूप उदघट काय की सृष्टि करता है वहाँ सुरति शब्द (नाम) की प्रतिष्ठा करने में भी अनुपम है। सुरति शब्द की साधना सम्बन्धी तत्त्वों की विवचना पर्याप्त है।

दो शब्द इस साधना की उपनिषद् का मन्त्र पर बह कर इस निबन्ध को समाप्न किया जा रहा है। प्रायः सत्ता का आलाचना में सुरति शब्द की साधना का निगुण या निगुणिय सत्ता की साधना कहा है। उनका इस विषय में जो सत्ता का उपर नीरसता का आरोप होता है, वही इस साधना पद्धति पर नीरसता का साध्य भी लगता है। इसका उत्तर में गुण मान लेंगे ही कहना है कि इस प्रणाली का विरक्त सत्ता में भी (क्याकि इस भाग का अनुयायियों में गृहस्थों की सत्ता विरक्त में अधिक है) कभी घर द्वार छोड़कर विरक्त हान के लिए किसी में नहीं जाता। और उक्त सबका निगुण मनावनम्बी भी कहना अविचार की मयाग का उत्पन्न करना है। वास्तव में इस साधना पद्धति में भक्ति और ज्ञान अथवा भावना तथा बुद्धि का प्रम